Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VI, Issue XI,July - 2013, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

# साहित्येतिहास लेखन की परम्पराः काल विभाजन तथा नामकरण

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VI, Issue XI, July - 2013, ISSN 2230-7540

# साहित्येतिहास लेखन की परम्पराः काल विभाजन तथा नामकरण

**Dr. Randhir Singh**

Asst. Professor (Seth Tek Chand College of Education) Rattan Dera (Kurukshetra)

----------♦----------

साहित्येतिहास अर्थात् साहित्य का इतिहास, अतः साहित्येतिहास लेखन का तात्पर्य साहित्य का इतिहास–लेखन ही है। ज्ञान–विज्ञान की बहुविध विधाओं में सर्वाधिक विस्तृत, व्यापक और विराट विधा साहित्य ही है। साहित्य अर्थात् अभिव्यक्ति का वह पटल जिस पर मानव का सम्पूर्ण जीवन रूपायित होता है। ऐसे साहित्य का इतिहास–लेखन एक दुष्कर कार्य है, इसलिए विस्तृत अध्ययन, प्रखर प्रतिभा, सूक्ष्म तथा गहरी समझ तथा प्राञ्जल अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है। साहित्येतिहास के लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह साहित्य की संवेदना, कल्पनाशीलता, कोमलता, रागात्मकता, जीवन–मूल्य–प्रतिबद्धता के साथ इतिहास की यथार्थता, तार्किकता, घटनाबद्धता, अन्वेषण की क्षमता का संतुलित, सार्थक, सम्प्रभावी संतुलन स्थापित कर सके।

हिन्दी की अपनी समृद्ध साहित्येतिहास लेखन की परम्परा है पर उस परम्परा के प्रवाह में बौद्धिक अवगाहन करने के पूर्व साहित्येतिहास का मूलभूत अर्थ जानना आवश्यक हो जाता है।

व्युत्पत्तिपरक अर्थः साहित्येतिहास शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है–'साहित्य + इतिहास'। साहित्य और इतिहास ये दोनों ही अत्यन्त व्यापक तथा समर्थ विधाएं हैं। अतः 'साहित्येतिहास' शब्द में 'साहित्य के इतिहास–लेखन' का अर्थ ध्वनित होता है।

अभिप्रायः 'साहित्येतिहास' अर्थात् 'साहित्य + इतिहास'। 'साहित्येतिहास' के स्वरूप के सम्यक् बोध हेतु साहित्य तथा इतिहास का ज्ञान आवश्यक है, साहित्य में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है। उसका सम्बन्ध ज्ञान–विज्ञान की किसी एक शाखा से न होकर मनुष्य की सम्पूर्ण मानसिक–वृत्तियों से होता है। उसमें मनुष्य की संवेदना स्पन्दित होती है, चित्त–वृत्तियॉ विकसित होती हैं तथा जीवन मूल्य अपने इन्द्रधनुषी रंग बिखेरते हैं।

साहित्य का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है 'साहितस्वयभावः' अर्थात् जिसमें 'साहित्य का भाव' निहित होता है, वह साहित्य है। 'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार की जा सकती है–1. हितने सहितम् तथा 2. 'सहित' अर्थात् साथ में।

'हितेन सहितम्' अर्थात हित के साथ। किसका हित ? उत्तर है 'जीवमात्र' का हित। अतः साहित्य अभिधान उसी 'सृजन' का होगा, जिसमें सम्पूर्ण विश्व के लोकमंगल की भावना निहित हो। लोकमंगल अर्थात् शिवत्व और जो 'शिव' है उसका अपूर्ण तथा अखण्ड सौन्दर्य से युक्त होना स्वाभाविक है। जहां शिवम् तथा सुंदरम् का ऐसा दिव्य समन्वय हो, वहां मिथ्यात्व का कोई स्थान नहीं होता है, वहां तो सम्पूर्ण, शाश्वत सत्य की आभा विकीर्ण होती है। इस प्रकार 'साहित्य' सृजन का वह रूप है जो सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्' से विभूषित रहता है। ऐसे लोक कल्याण की चिरन्तन भावना से युक्त साहित्य में सम्पूर्ण मानव, जीवन उद्घाटित, विवेचित तथा स्पन्दित होता है। इस प्रकार 'साहित्य' का क्षेत्र अत्यन्त विराट है।

'साहित्य' का दूसरा अर्थ है 'साथ' अर्थात् 'मिलन'। 'साथ' अथवा मिलन किसका? विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'साहित्य' विषयक अवधारणा का आश्रय लेते हुए कहा जा सकता है कि साहित्य में यह मिलन भावना का भावना से, विचार का विचार से, अतीत का वर्तमान से, वर्तमान का भविष्य से होता है। इतना ही नहीं जिसमें मानव का मानव से मिलन होता है, वह साहित्य है।

साहित्य की यह, उद्देश्य–विषय–क्षेत्र संबंधी, परिव्याप्ति उसे ज्ञान–विज्ञान की अन्य विधाओं, विभिन्न शास्त्रों आदि से अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर तथा महत्तर बना देती है। ऐसे साहित्य का इतिहास लेखन बाल–सुलभ–चेष्टा नहीं है।

इतिहास साहित्येतिहास शब्द का दूसरा घटक है 'इतिहास'। मानव द्वारा अर्जित ज्ञान का लेखा–जोखा इतिहास है। यह मनुष्य–जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के घात–प्रतिघात का लिपिबद्ध विवरण है। वस्तुतः 'इतिहास' की सहायता से मनुष्य अपने मानसिक तथा बौद्धिक क्षितिज का विस्तार करता है।

इतिहास शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– 'इति + ह + आस'। इति = इस प्रकार 'ह' = निश्चय तथा 'आस्' (लिट् लकार) = वर्तमान का। इस प्रकार 'इतिहास' का अर्थ है 'परम्परा से प्राप्त उपाख्यान समूह'। आप्टे ने संस्कृत हिन्दी कोश में 'इतिहास' के अर्थ को स्पश्ट करते हुए लिखा है – ''धर्मार्थ काममोक्षाणामुपदेश समन्वित् पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।''

अर्थात् धर्म–अर्थ–काम के उपदेश से समन्वित,कथात्मक पूर्ववृत्त को इतिहास कहा जाता है।

'इतिहास' के इस व्युत्पत्तिपरक अर्थ का ग्रहण करते हुए निरुरक्तकार ने भी लिखा है–'

'इति ह एवमासीत' इति च उच्यते स इतिहासः' अर्थात् अतीत की निश्चित रूप से होने वाली घटना इतिहास है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इतिहास वस्तुतः मनुष्य की, व्यावहारिक रूप से अद्यतन उपलब्धियों के सार का अभिलेख इतिहास है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी अतीत में घटित घटनाओं के लिए इतिहास शब्द का प्रयोग किया है–

भयउ विकल बरनत इतिहास। राम रहित धिग जीवन आसा।।

www.ignited.in

इस प्रकार 'इतिहास' वह विषय है जिसमें उसके युग विशेष का; देश–काल के घटनाओं का यथार्थपरक, सत्याधारित चित्रण होता है। इसीलिए मुंषीप्रेमचन्द्र ने तो साहित्य को ही सच्चा इतिहास बताया है–

''साहित्य ही सच्चा इतिहास है, क्योंकि उसमें अपने देश और काल का जैसा चित्र होता है वैसा किसी इतिहास में नहीं हो सकता। घटनाओं की तालिका इतिहास नहीं है और न राजाओं की लड़ाइयां ही इतिहास है। इतिहास जीवन के विभिन्न अंगों की प्रगति का नाम है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि इतिहास तथा साहित्य का सामाजिक तथा सधन अन्तःसम्बन्ध है। वस्तुतः एक स्वतन्त्र विषय के रूप में कक्षा में पढ़ाये जाने वाले इतिहास तथा साहित्येतिहास में पर्याप्त अन्तर है। सामान्य इतिहास अतीत में घटित घटनाओं, गतिविधियों आदि का परिचय देता है। वह व्यक्ति, समुदाय, समाज, जाति वर्ग, देश के पारस्परिक सम्बन्धों, परिवर्तनों का विवरण प्रस्तुत करता है।

यह विवरण स्थूलता लिए होता है। पर साहित्येतिहास में साहित्य का विवरण, विवेचन तथा मूल्यांकन करते समय रचनाकारों तथा रचनाओं–दोनों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पहलुओं को ध्यान में रखना होता है। वस्तुतः साहित्येतिहास ज्ञान की एक विशिष्ट तथा स्वतन्त्र विधा है। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कहते हैं–

'कोश–वृत्त–संग्रह, कवि–नामावली, कालक्रमानुसार ग्रन्थों का अध्ययन और उनकी आलोचना उसी प्रकार साहित्येतिहास नहीं है, जिस प्रकार सम्राटों के नाम और कृत्य योद्धाओं के वीर अर्थपूर्ण आख्यान, युद्धों की तिथियॉं, प्रशासनिक सुधारों की तालिकाएं इतिहास नहीं है। साहित्येतिहास अपनी सामग्री का उपयोग करते हुए भी इन सबसे ऊपर मानव जाति को, अपने को पहचानने के लिए ज्ञान का एक विशिष्ट एवं स्वतन्त्र साधन है।'

वस्तुतः साहित्येतिहास का मुख्य प्रतिपादक है–मनुष्य, उसका जीवन, उसका समाज। उसको भली प्रकार समझने–जानने के लिए साहित्येतिहास का अध्ययन उपयोगी और अवश्यम्भावी होता है। इस सत्य को उद्घाटित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं–

साहित्य का इतिहास पुस्तकों, उनके लेखकों और कवियों के उद्भव तथा विकास की कहानी नहीं है। वह वस्तुतः अनादिकाल प्रवाह में निरतर प्रवहमान जीवित मानव समाज की ही विकास कथा है। ग्रन्थ और ग्रन्थकार, कवि और काव्य, सम्प्रदाय और उनके आचार्य उस परम शक्तिशाली प्राणधारा की ओर सिर्फ इशारा भर करते हैं। वे ही मुख्य नहीं हैं, मुख्य हैं मनुष्य; जो प्राणधारा नाना अनुकूल प्रतिकूल अवस्था से बहती हुई हमारे भीतर प्रवाहित हो रही है। उसको समझने के लिए भी हम साहित्य का इतिहास पढ़ते हैं।''

साहित्य की विकासात्मक धारा के आदि स्रोत से लेकर–वर्तमान तक के सम्पूर्ण स्वरूप का सम्यक्, संयुक्त, सार्थक अध्ययन–विवेचन का कार्य साहित्येतिहास करता है। वह इस प्रगति का एक सच्चा तथा यर्थार्थपूर्ण लेखा–जोखा पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही वह विभिन्न युग के साहित्य की प्रगति की पृष्ठभूमि, उस पर पड़ने वाले प्रभावों मूलभूत प्रवृत्तियों आदि का भी सतर्क तथा सार्थक विश्लेषण करता है। इसलिए साहित्य के सर्वान्ड् का सम्यक् तथा सम्पूर्ण बोध के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। इस संबंध में डॉ0 मैनेजर पाण्डेय का यह कथन ध्यातव्य है–''साहित्य की रचना और आलोचना की अधिकांश समस्याएं साहित्य के इतिहास की समस्याएं होती हैं, इसलिए साहित्य व इतिहास के बीच से ही ऐसी समस्याओं के समाधान खोजे जा सकते हैं। वास्तव में साहित्य विवेक के विकास के लिए इतिहास बोध आवश्यक है।''

## साहित्येतिहास की परम्परा

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की एक सुदीर्घ परम्परा है। इस परम्परा की लम्बी लड़ी में अनेक महत्वपूर्ण साहित्येतिहास रूपी मोती अपनी आभा विकीर्ण कर रहे हैं। साहित्येतिहास का लेखन कब प्रारम्भ हुआ, उसका प्रथम ग्रन्थ कौन–सा है, इस संबंध में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'भक्तमाल कवितमाला', 'कालिदास हजारा' जैसे ग्रन्थों का प्रणयन हुआ था, जिन्हें साहित्येतिहास की संज्ञा दी जा सकती है। परंतु इतिहास की दृष्टि से इन ग्रन्थों में अनेक कमियॉं हैं, जिनके कारण इन्हें साहित्येतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। इसमें हिन्दी के अनेक कवियों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का परिचय दिया गया है, परंतु इसमें कालक्रम के अभाव के साथ ही सन्–संवत आदि का उल्लेख नहीं है। अतः इनहें साहित्येतिहास नहीं माना जा सकता है।

(1) डॉ0 नगेंद्र के अनुसार इतिहास लेखन का सबसे पहला प्रयास एक फ्रेंच विद्वान गार्सा द तांसी का है। उन्होने फ्रेंच भाषा में 'इसवार द ला लितरेलूर एन्दुई ऐन्दुस्तानी' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके प्रथम भाग का प्रकाशन सन् 1939 ई. में हुआ था। इसमें हिन्दी तथा उर्दू के अनेक कवियों का विवरण दिया गया है, जिसकी प्रमुख विशेषता है– वर्ग क्रमानुसार। सं. 1871 ई. में प्रकाशित इसके द्वितीय संस्करण को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है, जिसमें पर्याप्त संशोधन तथा परिवर्तन किया गया है। वस्तुतः यह हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का पहला प्रयास है। इसमें कवियों की रचनाओं के साथ ही उनकी रचना का काल भी दिया गया है। कवि–कृतियों का विवेचन करते समय तांसी ने भारतीय तथा योरोपीय विद्वानों द्वारा रचित सन्दर्भ–ग्रन्थों का सहारा लिया था।

साहित्येतिहास लेखन के सन्दर्भ में तॉसी के ग्रन्थ का महत्व होते हुए भी इसे विशुद्ध साहित्येतिहास ग्रन्थ की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। इसके कई कारण हैं। इसमें वर्णित कवियों का विवरण कालक्रमानुसार नहीं है। काल–विभाग भी नहीं दिये गये हैं। युग की प्रमुख प्रवृत्तियों का भी विवेचन नहीं किया गया है। फिर भी इसका महत्व कम नहीं है। एक विदेशी विद्वान का इतना गंभीर तथा श्रमसाध्य प्रयास महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसने भावी साहित्येतिहास–लेखकों को एक दृष्टि दी, सामग्री प्रस्तुत की। डॉ0 पारीक के शब्दों, ''हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास गार्सा द तांसी के ग्रन्थ द्वारा लिखा गया, यह मत प्रायः सर्वमान्य सर्वविदित हैं।

(2) भाषा काव्य संग्रह : डॉ0 नगेन्द्र सहित हिन्दी के अनेक विद्वानों ने साहित्येतिहास की परम्परा में तांसी के बाद शिव सिंह सेंगर को स्थान दिया है। परंतु इन दोनों ग्रन्थों के बीच स्थित भाषा काव्य संग्रह नामक ग्रन्थ का उल्लेख करना आवश्यक है। इसकी रचना संवत् 1930 में हुई थी इसके संग्रहकर्ता पं0 महेश दत्त शुक्ल थे। इसमें 100061 पद्य हैं। जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हैः–

यामें एक सहस्र अरु यकसाट हैं सब पद्य।यह मैं जानत नहिं क्यतिक हो हिंमने यदि गद्य।।

कविताओं की संख्या और कवियों पर दी गई संक्षिप्त टिप्पणियों से यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बन गया। इसके अंत में कठिन शब्दों का कोष भी प्रस्तुत किया गया है। इन विशेषताओं के होते हुए भी इसे विशिष्ट रूप से साहित्येतिहास ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें अनेक कमियॉ हैं। जैसे कबीर, जायसी, धनानन्द जैसे अनेक महत्वपूर्ण कवियों का चयन नहीं किया गया है। संग्रहित कवियों के चयन में न तो कोई निश्चिय क्रम है और न ही ऐतिहासिक क्रम। फिर भी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा में इसका विशेष महत्व है। डॉ0 आनन्द राय शर्मा के शब्दों में ''भाषा काव्य संग्रह'' का एक आनुषांगिक महत्व यह है कि इसने डॉ0 शिव सिंह को न केवल 'सरोज' के निर्माण की प्रेरणा दी, प्रत्युत बहुत दूर तक उनका मार्गदर्शन भी किया।''

(3) शिव सिंह सरोज : शिवसिंह सेगर द्वारा लिखित ''शिव सिंह सरोज'' का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना सन् 1883 ई. में हुई थी। इसमें लगभग 10003 कवियों का परिचयात्मक विवरण हैं और 8039 कवियों की कविताओं के उद्धरण में संकलित कवियों के जन्म समय, रचना के समय आदि को निर्देशित किया गया है। सम्पूर्ण विवरण वर्णनानुक्रम पद्धति से किया गया है।

साहित्येतिहास की कसौटी पर कसने पर 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रन्थ खरा नहीं उतरना है। कवियों के जन्म पर समय उनकी रचनाओं का समय आदि अधिकतर अनुमान पर आधारित है। अतः विश्वसनीय नहीं है। फिर भी इसके महत्व को कम नहीं किया जा सकता क्योंकि इसने बाद के साहित्येतिहास लेखकों को पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। इसके प्रमाण में ग्रियर्सन के इस कथन को उद्धत किया जा सकता है–

''एक देशी ग्रन्थ जिस पर मैं अधिकांश से निर्भर रहा हूँ और प्रायः सभी छोटे कवियों और अनेक प्रसिद्ध कवियों के भी संबंध में प्राप्त सूचनाओं के लिए जिसका मैं ऋणी हूँ, वह शिव सिंह सेंगर द्वारा विरचित और मुंषीनवल किशोर द्वारा प्रकाशित अत्यन्त लाभदायक 'शिव सिंह सरोज' हैं।''

(4) द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान : जार्ज ग्रेयसेन द्वारा लिखित व मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान वस्तुतः हिन्दी का प्रथम साहित्येतिहास ग्रन्थ कहलाने का अधिकारी है। सर्वप्रथम इसका प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की पत्रिका की विशेषांक के रूप में सन् 1888 में हुआ था। इसमें पहली बार कवियों और लेखकों का काल क्रमानुसार वर्गीकरण करने के साथ–साथ उनकी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट किया गया है। इतना ही नहीं ग्रियर्सन ने पर्वतीय साहित्येतिहास लेखकों को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। विभिन्न युगों की काव्य प्रवृत्तियों की विवेचना करते हुए उनकी सांस्कृतिक स्थितियों और प्रेरणास्रोतों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दी साहित्य के विकासक्रम को स्पष्ट करने में उन्होंने जिस पद्धति का सहारा लिया वह पर्वतीय लेखकों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

ग्रियर्सन ने बड़ी ईमानदारी से उन ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो उनके द्वारा रचित ग्रन्थ के आधार स्रोत रहे हैं। जैसे तांसी और शिवसिंह सेंगर के ग्रन्थ, साथ में भक्तमाल, कालिदास हजारा, भाषा काव्य संग्रह आदि। उन्होंने सबसे पहले 16वीं–17वीं शती के युग को हिन्दी काव्य का स्वर्णयुग सिद्ध किया। ग्रियर्सन के इस ग्रन्थ के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ0 किशोर लाल गुप्त लिखते हैं ''यह हिन्दी साहित्य की नींव का वह पत्थर है जिस पर आचार्य शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास का भवन निर्मित किया। इस इतिहास ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व है। इसने प्रारम्भिक खोज रिपोर्टों एवं ''मिश्र बन्धु विनोद'' को पूर्णतः प्रभावित किया है।

(5) मिश्र बन्धु विनोद : मिश्रबन्धु विनोद नामक ग्रन्थ के रचयिता मिश्रबन्धु थे। इस ग्रन्थ के चार भाग हैं प्रथम तीन भाग का प्रकाशन सन् 1913 ई. में तथा चतुर्थ भाग का प्रकाशन सन् 1934 ई. में हुआ। 8 से भी अधिक काल खण्डों में विभाजित इस ग्रन्थ में लगभग पांच हजार कवियों को संकलित किया गया है। इसमें कवियों के विवरणों के साथ–साथ सात्यि के विभिन्न अंगों को स्पष्ट किया गया हैं। इसके अतिरिक्त वे ऐसे अनेक अज्ञात कवियों को सामने लाने में सफल हुए हैं जिनका साहित्यिक दाय महत्वपूर्ण हैं। साहित्येतिहास लेखन की परमपरा को आगे बढ़ाने में इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण भूमिका है। पर्वतीय लेखकों की इसमें महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराई है। इस सत्य को स्वीकार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, ''कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्रायः 'मिश्र बन्धु विनोद' से ही लिये हैं।''

प्रश्न उठता है ''मिश्र बन्धु विनोद'' एक पूर्ण साहित्येतिहास ग्रन्थ है या नहीं? इसका उत्तर स्वयं मिश्र बन्धुओं ने दिया है। उनहेांने प्रस्तुत ग्रन्थ को साहित्येतिहास न मानते हुए इस बात का भरपूर प्रयास किया है कि एक आदर्श इतिहास सिद्ध है इसके लिए उन्होंने विविध कृतियों, विविध लेखों, खोज विवरणों आदि से सामग्री एकत्र की है। फिर भी इसमें इतिहास की दृष्टि से अनेक त्रुटियॉ हैं जैसे इसमें निर्धारित विभिन्न कालों की अवधि में बहुत असमानता है। इसमें दिये गये विभाजन के नामकरण का कोई निश्चिय आचार नहीं है।

(6) हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' हिन्दी साहित्य की इतिहास लेखन की परम्परा में मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। सन् 1929 ई. को प्रकाशित यह ग्रन्थ मूल रूप में नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में लिखा गया था। उसे ही संशोधित और विस्तृत करके एक स्वतन्त्र साहित्येतिहास ग्रन्थ का रूप दिया गया। आचार्य शुक्ल ने साहित्येतिहास लेखन के संबंध में एक सुनिश्चित और स्पष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है उन्होंने युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में साहित्य के विकास क्रम की विवेचना प्रस्तुत की। वे पहले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने साहित्येतिहास को साहित्यालोचन से अलग एक स्वतन्त्र विधा के रूप में स्थापित किया। इस तरह उन्होंने साहित्येतिहास लेखन का विकासवादी और वैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित किया। आचार्य शुक्ल ने पहली बार सम्पूर्ण भक्तिकाल को चार शाखाओं में वर्गीकृत करते हुए उसे विशुद्ध दार्शनिक और धार्मिक आधार पर स्थापित किया। साहित्येतिहास लेखन के संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने जनता की चित–वृत्तियों के महत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। उनका मत है ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संक्षिप्त प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता को चित्तवृत्ति में परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के

साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।

हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की परम्परा में शीर्षस्थ ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का महत्व डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में दृष्यव्य है–

''हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की परम्परा में आचार्य शुकल का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका इतिहास ही कदाचित अपने विषय का पहला ग्रन्थ हैं–जिसमें अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यापक ग्रन्थि, विकसित दृष्टिकोण, स्पष्ट विवेचन, विश्लेषण विवेचन और प्रामाणिक निष्कर्षों का सन्निवेश मिलता है।

(7) हिन्दी साहित्य की भूमिका : हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा में अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित ''हिन्दी साहित्य की भूमिका'' है। इस ग्रन्थ के प्रणयन् में लेखक द्वारा जिस क्रम और पद्धति को अपनाया गया है वह विशुद्ध रूप से इतिहास नहीं है। परंतु आचार्य द्विवेदी ने विविध स्वतन्त्र लेखों के द्वारा कुछ ऐसे तथ्यों और निष्कर्षों का प्रतिपादन किया है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। द्विवेदी जी ने इनके द्वारा एक नवीन दृष्टि, नई सामग्री और नूतन व्याख्या प्रस्तुत की है। आचार्य शुकल ने साहित्येतिहास लेखन में युगीन जन प्रवृत्तियों को महत्व दिया था। इसके विपरीत आचार्य द्विवेदी ने युगीन प्रभाव के एकांगी दृष्टिकोण पर आधारित धाराणाओं को खण्डित करते हुए परम्परा के महत्व को स्थापित किया। आचार्य द्विवेदी जी ने सिद्धों और नाथपंथियों के वैचारिक विषय और अभिव्यक्ति की शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए संत कबीर पर उनके प्रभाव को रेखांकित किया। इसके लिए उन्होंने संत काव्य परम्परा के स्रोतों का गहन और सहन अनुसंधान किया। इसके साथ ही उन्होंने संत साहित्य और वैष्णव भक्ति काव्य के ऐतिहासिक मूल्यांकन के लिए एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कुछ और साहित्येतिहास संबंधी ग्रन्थ हैं। जैसे 'हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' आदि इन ग्रन्थों में उनके साहित्येतिहास लेखन संबंधी चिंतन और दृष्टिकोण का और अधिक सम्पुष्ट तथा सुव्यवस्थित रूप देखने को मिलता है। इस संबंध में डॉ0 नगेंद्र का यह कथन अवलोकनीय है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की विशेषतः मध्यकालीन काव्य के स्रोतों व पूर्व परम्पराओं के अनुसंधान तथा उनकी अधिक सहानुभूति की यथातथ्य व्याख्या करने की दृष्टि से आचार्य द्विवेदी का योगदान अप्रतिम है। वस्तुतः वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने आचार्य शुक्ल की अनेक धारणाओं और स्थापनाओं को चुनौती देते हुए उन्हें सबल प्रमाणों के आधार पर खण्डित किया है।

(8) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ0 रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित 'हिन्दी सात्यि का आलोचनात्मक इतिहास' सन् 1938 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने एक विशेष कालखण्ड (सन् 693–1693 ई.) तक रचित हिन्दी साहित्य का विवेचन किया है। विवेच्य ग्रन्थ सात प्रकरणों–सन्धिकाल, चारणकाल, भक्ति काल की अनुक्रमणिका, भक्तिकाल, प्रेमकाव्य, रामकाव्य तथा कृष्णकाव्य में विभाजित है। इस प्रकार डॉ0 वर्मा ने केवल भक्तिाकाल तक के साहित्य को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है।

डॉ0 रामकुमार वर्मा ने वीरगाथाकाल या 'आदिकाल' को 'चारणकाल' नाम दिया है। हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में उन्होंने अपभ्रंश के कवि 'स्वयम्भू' को मान्यता दी है। इस 'साहित्येतिहास' ग्रन्थ में वर्मा जी का कवि रूप प्रतिबिम्बित हुआ है। भाषा–शैली में एक काव्यात्मक प्रभाव है। प्रकरणों में 'प्रेमकाव्य', 'रामकाव्य', 'कृष्णकाव्य' जैसे छोटे–छोटे नाम एक विशिष्टता है।

(9) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास : काशी नागरी प्रचरिणी सभा ने हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास नामक ग्रन्थ कई भागों में प्रकाशित किया है। साहित्येतिहास का यह सर्वाधिक सुदीर्घ ग्रन्थ है। विभिन्न भागों में साहित्य की विस्तृत सामग्री प्रस्तुत की गई है। इसका प्रमुख आकर्षण है–विविध भाषाओं में हिन्दी साहित्य का प्रस्तुतीकरण। प्रत्येक भाग अलग–अलग विद्वानों के सम्पादन में तथा विभिन्न लेखकों के सहयोग से सृजित किया गया है। इस ग्रन्थ ने हिन्दी साहित्येतिहास की बिखरी हुई सामग्री को एक जगह एकत्र करके उसका मूल्यांकन करने में सफलता प्राप्त की है। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ की हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परम्परा में, विशिष्ट भूमिका है।

(10) हिन्दी साहित्य : डॉ0 धीरेंद्र वर्मा द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य' में विभिन्न विद्वानों के लेख संकलित है। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन भागों में विभाजित है–आदिकाल मध्यकाल और आधुनिक काल। इन तीनों कालों की काव्य–परम्पराओं का अलग–अलग विवरण प्रस्तुत किया है। प्रत्येक काल की प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करते हुए उनके मूलभूत स्रूप को स्पश्ट किया गया है। काव्य परम्पराओं का विवरण प्रस्तुत करते हुए लीक से हटकर, नई काव्य परम्परा की भी स्थापना की गयी है। इसमें वर्णित 'रसोकाव्य परम्परा' ऐसी ही नई परम्परा है।

विभिन्न विद्वानों के सहयोग के कारण इतिहास लेखन की पद्धति में एकरूपता का अभाव 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना'' के अनुसार विविध लेखकों के साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया है।

(11) हिन्दी साहित्य का इतिहासः डॉ0 नगेंद्र द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' – साहित्येतिहास लेखन परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। सन् 1963 ई. में प्रकाशित इस ग्रन्थ में विभिन्न विशिष्ट विद्वानों की रचनाएं संकलित हैं। यह एक विस्तृत ग्रन्थ है। इसमें सर्वप्रथम साहित्येतिहास के पुर्नलेखन की समस्याओं को उठाया गया है। भूमिका के रूप में हिन्दी भाषा के उद्भव, विकास तथा स्वरूप की विवेचना प्रस्तुत की गयी है। तदनन्तर हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर अद्यतन साहित्य का गंभीर अध्ययन विवेचन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी के पद्य तथा गद्य दोनों विधाओं का सुदीर्घ, सतर्क तथा सार्थक विवेचन इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार डॉ0 नगेंद्र द्वारा 'सम्पादित' यह ग्रन्थ साहित्येतिहास लेखन के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए हिन्दी साहित्य का, विभिन्न कालों के अंतर्गत, समग्र रूप में मूल्यांकन करता है। इसके साथ ही साहित्येतिहास का स्वरूप, लेखन–पद्धति परम्परा, नामकरण तथा काल निर्धारण आदि का गंभीर विवेचन इस ग्रन्थ की विशिष्टता है।

(12) आधा इतिहासः डॉ0 सुमन राजे कृत आधा इतिहास साहित्येतिहास लेखन की परम्परा गतिमान करने वाला महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। उन्होंने साहित्येतिहास लेखन के एक नितांत अछूते तथा उपेक्षित पक्ष को बड़ी जीवन्तता तथा सतर्कता के साथ रेखांकित किया है। उनके अनुसार अभी तक हिन्दी साहित्य का जो इतिहास–लेखन हुआ है वह आधा है, क्योंकि

उसमें केवल पुरुश–साहित्यकारों का ही वर्चस्व है। एक–से–एक समर्थ, सशक्त, सार्थक महिला–लेखन को या तो उपेक्षित कर दिया गया है, या नकार दिया गया है। इस अधूरेपन को दूर करने के लिए ही डॉ0 राजे ने आधा इतिहास ग्रन्थ का प्रणयन किया।

डॉ0 राजे ने वैदिक काल से लेकर प्राकृत, पालि, अपभ्रंश साहित्य–सारणियों को पार करते हुए आदिकाल से लेकर अद्यतन हिन्दी साहित्य का अवगाहन करके एक–से–एक सशक्त, सम्प्रभावी और सार्थक महिला–लेखन को उद्घाटित किया है। अपने इस गम्भीर विवेचन में उन्होंने गद्य तथा पद्य दोनों विधाओं का अनुसन्धित्सु दृष्टि से अध्ययन किया है। इस प्रकार डॉ0 सुमन राजे ने साहित्येतिहास लेखन में एक मौलिक तथा एक ऐतिहासिक दृष्टि प्रस्तुत की है। अतः साहित्येतिहास लेखन की परम्परा में आधा इतिहास का विशेष महत्व है।

आधा इतिहास से पूर्व डॉ0 सुमन राजे का एक अन्य ग्रन्थ आदिकाल सन् 1976 ई. में प्रकाशित हो चुका है। इसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य में आदिकाल का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

साहित्येतिहास सम्बन्धी उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रन्थों की भी रचना हुई है। ये वास्तविक रूप में सम्पूर्ण साहित्येतिहास ग्रन्थ तो नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि उनमें हिन्दी साहित्य का समग्रतः विवेचन नहीं है। उसमें साहित्य की किसी एक विधा, अंग या काल का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह विवेचन एक नवीन ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय देता है। ऐसे ही कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं– हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास (डॉ0 भागीरथ मिश्र), रीतिकाव्य की भूमिका (डॉ0 नगेन्द्र), चैतन्य सम्प्रदाय और उसका साहित्य (प्रभु दयाल मीतल), हिन्दी वीरकाव्य (डॉ0 टीकमसिंह तोमर), राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ0 मोतीलाल मेनारिया) आदि। इनके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी विभिन्न शोध प्रबन्ध भी इस परम्परा को आगे बढ़ाने में सहायक हो रहे हैं।

## साहित्येतिहास में काल विभाजन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल–विभाजन और नामकरण को लेकर मतैक्य नहीं है। विभिन्न विद्वानों के विविध मत हैं। पर्याप्त वैचारिक मन्थन–चिन्तन तथा शोध के पश्चात भी इस समस्या का सर्वमान्य हल नहीं निकल सका है। काल–विभाजन तथा नामकरण के सम्बन्ध में उपलब्ध प्रमुख मतों का अध्ययन करते हुए किसी एक उपयुक्त मत का निर्धारण प्रस्तुत विवेचना का लक्ष्य है।

(क) साहित्येतिहास में काल–विभाजन समस्याः साहित्येतिहास में काल–विभाजन को लेकर विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। उनमें से कुछ प्रमुख मतों को लेकर इस समस्या के निराकरण का प्रयास किया जा रहा है।

1. डॉ0 ग्रियर्सनः डॉ0 ग्रियर्सन ने दि मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान नामक अपने ग्रन्थ के 19वें अध्याय में काल विभाजन का स्पष्ट निर्देश किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन इस प्रकार है–

1. चारण काल (700 से 1400 ई.)
2. पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण
3. मलिक मुहम्मद जायसी का प्रेमकाव्य
4. ब्रज का कृष्णकाव्य (1500 से 1600 ई.)
5. मुगल दरबार
6. तुलसीदास
7. रीतिकाल (1580 से 1692 ई.)
8. तुलसीदास के अन्य परवर्ती (1600 से 1700 ई.)
9. अठारहवीं शताब्दी (1700 से 1800 ई.)
10. कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान
11. विक्ओरिया के शासन में हिन्दुस्तान
12. विविध अज्ञात कवि।

डॉ0 ग्रियर्सन के उपर्युक्त काल–विभाजन का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। कहीं विभाजन

का आधार साहित्यकारों का वर्ग है (जैसे– चारणकाल), तो कहीं साहित्यिक अथवा साहित्येतर प्रवृत्तियां (यथा–रीतिकाल, मुगल दरबार आदि) तो कहीं एक विशेष शासनकाल में विकसित साहित्य (जैसे, कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान, विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान)। ग्रियर्सन के इस विभाजन का विशेष महत्व इस बात में है कि उसमें भावी साहित्येतिहास ग्रन्थों की रचना के लिए एक सूचनापरक उपयोगी पृष्ठभूमि की संरचना की।

2. मिश्रबन्धु विनोदः मिश्रबन्धुओं द्वारा विरचित मिश्र बन्धु विनोद एक बृहदाकार ग्रन्थ है। यह चार भागों में विभाजित है। मिश्र बन्धुओं का हिन्दी साहित्य का काल विभाजन दो प्रवृत्तियों पर आधारित है। पहली–समय के पूर्वापर प्रवाह की सीमाओं के अनुसार (आरम्भ मध्य एवं वर्तमान) तथा दूसरी एक जैसी कृतियों या वर्गों के अनुसार।

प्रथम प्रकार के आधार पर आश्रित वर्गीकरण इस प्रकार है–

1. प्रारम्भिक काल (संवत् 700 से 1444 ई. तक)
2. माध्यमिक काल (संवत् 1445 से 1680 वि. तक)
3. अलंकृत काल (संवत् 1681 से 1884 वि. तक)
4. अज्ञात काल
5. परविर्तन काल (सं. 1890 ई. 1925 वि.)
6. वर्तमान काल (सं. 1926 से...)

मिश्र बन्धुओं द्वारा प्रस्तुत दूसरे प्रकार का काल विभाजन इस प्रकार है–

1. प्रारम्भिक हिन्दी (सं. 700 से 1444)
2. माध्यमिक हिन्दी (सं. 1445 से 1680)
3. अलंकृत हिन्दी (सं. 1681 से 1889)
4. अज्ञात काल
5. परिवर्तन काल (सं. 1890 से 1925)
6. वर्तमान काल (सं. 1926 से 1944)
7. पूर्व नूतन परपाटी (सं. 1945 से 1960)
8. उत्तर नूतन परिपाटी (सं. 1961 से 1994)

इन मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत उनहोंने कई उपवर्गों का भी समावेश किया है।

मिश्र बन्धुओं द्वारा प्रस्तुत यह बृहद् काल विभाजन भी समस्या का कोई उचित समाधान

प्रस्तुत नहीं कर पाया। काल–विभाजन के लिए उन्होंने जो मानदण्ड अपनाए हैं, उनमें भारी उलट–फेर की गई है। विभिनन कवियों के नाम पर निर्मित उपविभागों का कोई सार्थक औचित्य नहीं है।

3. हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की भूमिका साहित्येतिहास–लेखन–परम्परा में मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। उनके पूर्व के ग्रन्थ तो वस्तुतः कवि–वृत्त संग्रह मात्र थे। हिन्दी साहित्य का इतिहास ही सर्वप्रथम विशुद्ध इतिहास–ग्रन्थ के रूप में सामने आया। आ. शुक्ल द्वारा प्रस्तुत हिन्दी साहित्य का काल विभाजन इस प्रकार है–

(क) आदिकाल (वीरगाथा काल) सं. 1050–1375

(1) निर्गुण धारा – (1) ज्ञानराश्रयी शाखा

(2) प्रेममार्गी शाखा

(2) सगुण धारा – (1) कृष्णभक्ति शाखा

(2) रामभक्ति शाखा

(ग) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) 1700 से 1900 तक

3. आधुनिक काल (गद्य काल) 1900 से वर्तमान काल–

(1) प्रथम उत्थान

(2) द्वितीय उत्थान

(3) तृतीय उत्थान

डॉ0 रमाशंकर शुक्ल रसाल– डॉ0 रमाशंकर शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के काल विभाजन का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है–

1. आदिकाल– 1000 सं. से 1400 सं. तक

बाल्यावस्था– क– पूर्वार्द्ध – सं. 1000 से 1200 सं. तक

ख– उत्तरार्द्ध – सं. 1200 से 1400 सं. तक

2. मध्यकाल– 1400 से 1800 सं. तक

किशोरावस्था– (क) पूर्वार्द्ध सं. 1600 से 1600 सं. तक

(ख) उत्तरार्द्ध – सं. 1600 से 1800 सं. तक

3. आधुनिक काल– 1800 से अब तक

युवावस्था– (क) परिवर्तन काल सं. 1800 से 1900 सं. तक

(ख) वर्तमान – सं. 1900 अब तक

डॉ0 शुक्ल का यह चौरस विभाजन तर्क संगत नहीं है। उन्होंने इसके औचित्य–स्थापना के लिए कोई महत्वपूर्ण आधार नहीं प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के प्राक्कथन लेखक श्यामबिहारी मिश्र ने भी इसके औचित्य पर सवाल उठाया।

4. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदीः डॅ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन इस प्रकार किया है–

1. आदिकाल – 1000 ई. से 1400 ई. तक
2. भक्तिकाल – 15वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के मध्यकाल तक
3. रीतिकाल – 16वीं शताब्दी के मध्यभाग में 19वीं शताब्दी के मध्य भाग तक
4. आधुनिक काल – 1800 ई. से अद्यतन

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का काल–विभाजन भी प्रायः आ. शुक्ल के कालविभाजन जैसा ही

है पर इनमें युगों की कालावधि में अन्तर है। डॉ0 द्विवेदी ने आदिकाल का प्रारम्भ 1000 सं. से न मानकर 1000 इ. से माना है। इसी प्रकार आधुनिक काल का प्रारम्भ 18वीं शताब्दी से माना है।

हिन्दी साहित्य के कालविभाजन सम्बन्धी उपर्युक्त मतों की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल–विभाजन अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी तथा मान्य है। उन्होंने जनता की चित्तवृत्तियों के परिवर्तन को आधार मानकर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में उनकी धारणा है– यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काल में और प्रकार की रचनाएं होती हही नहीं थीं। जैसे भक्तिकाल या रीतिकाल को लें तो उसमें वीर रस के अन्य काव्य भी मिलेंगे जिनमें वीर राजाओं की प्रशंसा उसी ढंग से होगी, जिस ढंग की वीरगाथा काल में हुआ करती थी।

www.ignited.in

इसी प्रकार शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के काल विभाजन को एक व्यापक तथा ठोस आधार पर प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी के काल–विभाजन सम्बन्धी सिद्धान्तों को प्रायः सभी परवर्ती साहित्येतिहास लेखकों ने स्वीकार किया है। उन्होंने काल–विभाजन के दो सिद्धानत प्रमुख रूप से स्वीकार किये थे– 1. प्रचुरता और 2. प्रसिद्धी। इनके अनुसार, जिस काल–खंड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी है वह एक अलग कालखंड मान लिया गया है।

उपर्यूक्त चार कालों के अतिरिक्त आ. शुक्ल ने पूर्व आदिकाल को अपभ्रंशकाल नाम दिया है तथा इसके अन्तर्गत सिद्धों, नाथों तथा जैन–साहित्यकारों की साम्प्रदायिक रचनाओं को स्थान दिया है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चारण काल (700 से 1400 ई.)
2. पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण
3. मलिक मुहम्मद जायसी का प्रेमकाव्य
4. ब्रज का कृष्णकाव्य (1500 से 1600 ई.)
5. मुगल दरबार
6. तुलसीदास
7. रीतिकाल (1580 से 1692 ई.)